जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

विवेक के बिना जीव जहाँ भी जायेगा, ठगा जायेगा; क्योंकि सत्यासत्य का निर्णय करना विवेक का काम है।
ह्न सत्य की खोज, पृष्ठ-81

वर्ष : 28, अंक : 22 | सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
फरवरी (द्वितीय), 2006 | प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी** | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

कोटा (राज.) : श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल कोटा के तत्त्वावधान एवं श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन '**मुमुक्षु आश्रम ट्रस्ट**' कोटा के आयोजकत्व में शनिवार, दिनांक 4 से शुक्रवार, दिनांक 10 फरवरी, 2006 तक श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का भव्य आयोजन महामांगलिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ।

प्रतिदिन दोनों समय आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के सी. डी. प्रवचन होते थे। इस अवसर पर जैनदर्शन के तलस्पर्शी विद्वान बाबू जुगलकिशोरजी युगल कोटा के दो प्रवचन तथा विद्यावारिधि डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रतिदिन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर प्रासंगिक प्रवचनों का लाभ उपस्थित जन सैलाब ने लिया।

आपके अतिरिक्त डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरा, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ भी समाज को प्राप्त हुआ।

पंचकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि बाल ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के प्रतिष्ठाचार्यत्व एवं निर्देशन में सहयोगी प्रतिष्ठाचार्य पण्डित मधुकरजी जैन जलगाँव, पण्डित अजीतजी शास्त्री अलवर, पण्डित मनीषजी शास्त्री पिडावा, पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल, पण्डित संदीपजी शास्त्री बड़ामलहरा, पण्डित सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, पण्डित मनोजजी शास्त्री, पण्डित वीरेन्द्रजी शास्त्री बरा, पण्डित अश्विनजी नानावटी नौगामा, पण्डित सुदीपजी शास्त्री बरगी, पण्डित प्रियंकजी शास्त्री रहली, पण्डित बाबूलालजी बांझल गुना आदि विद्वानों ने सम्पन्न कराये।

दिनांक 4 फरवरी को ध्वजारोहण श्री प्रदीपकुमारजी चौधरी परिवार किशनगढ़ द्वारा किया गया। प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री निहालचन्दजी जैन ओसवाल जयपुर ने किया।

गिरधरपुरा में नवनिर्मित मुमुक्षु आश्रम के अन्तर्गत 71 फीट उत्तुंग भव्य जिनमंदिर, 51 फीट ऊँचा विशाल मानस्तम्भ, मुनिसुव्रतनाथ टोंक तथा स्वाध्याय भवन का नवनिर्माण श्री पदमचन्दजी प्रेमचन्दजी बजाज कोटा परिवार के सर्वाधिक आर्थिक सहयोग एवं पण्डित रतनचन्दजी शास्त्री कोटा के अथक् प्रयासों से हुआ।

दिनांक 10 फरवरी को जिनमंदिर में श्वेत पाषाण से निर्मित मूलनायक भगवान महावीरस्वामी के अतिरिक्त स्फटिक मणी की श्री सीमंधर भगवान की मनोज्ञ प्रतिमा, श्री शीतलनाथ भगवान, श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान, श्री पार्श्वनाथ भगवान एवं विधि नायक श्री आदिनाथ भगवान की भाववाही प्रतिमायें विराजमान की गईं।

साथ ही चार अनुयोगमय जिनवाणी, वेदी में आचार्य कुन्दकुन्द व आचार्य समन्तभद्र के चरण एवं 64 चँवरों की स्थापना हुई।

महोत्सव में आदिकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती क्रांति-हुकमचन्दजी जैन भोपाल को प्राप्त हुआ। सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री प्रेमचन्द-सुनीता बजाज कोटा तथा कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री प्रकाशचन्द-तारा खटोड कोटा थे। महोत्सव के यज्ञनायक श्री विजय-प्रतिभा जैन कोटा थे।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रामपुरा के सांस्कृतिक मण्डल द्वारा निमित्तोपादान अदालत एवं डी.पी. कौशिक मुजफ्फरनगर द्वारा सेठ सुदर्शन नाटिका की आध्यात्मिक प्रस्तुति की गई।

महोत्सव को सफल बनाने में कोटा की विविध संस्थाओं में श्री कुन्दकुन्द शिक्षण केन्द्र, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, श्री दि. जैन बाल विकास पारमार्थिक न्यास, वीर वनिता संघ एवं दिगम्बर जैन सोश्यल ग्रुप के सदस्यों का सराहनीय सहयोग रहा।

महोत्सव में सम्पूर्ण देश से पधारे हजारों साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया। इस अवसर पर लगभग 98 हजार 7 सौ रुपये का सत्साहित्य एवं 10,037 घंटो के सी.डी. व ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे। ●

साधना चैनल देखना न भूलें

प्रतिदिन रात्रि में 10.20 पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों को देखना/सुनना न भूलें। प्रसारण में 5-7 मिनिट की देरी भी हो सकती है। यदि निर्धारित समय से 10 मिनिट बाद तक भी प्रवचन प्रारंभ नहीं हो तो श्री पीयूषकुमारजी शास्त्री से 9414717829 अथवा (0141) 2705581 नं. पर सम्पर्क करें।

सम्पादकीय –

नींव का पत्थर

19

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

जीवराज ने कर्मकिशोर के अन्तिम प्रश्न वेदनाजनित भय और आर्तध्यान से किस आधार से बचने के इस अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कहा ह्न ''कि जब मुझे शारीरिक रोग के कारण असह्य वेदना होती तब मैं सोचता ह्न 'भगवान आत्मा तो आधि-व्याधि जनित पीड़ा से सर्वथा पृथक ही है। आत्मा राग व रोग दोनों से पृथक ही है। इसकारण वेदना होते हुए भी वेदना जनित भय नहीं था। और शरीर तो व्याधि का ही मन्दिर है, रोगों का ही घर है। इसके एक-एक रोम में ९६-९६ रोग हैं। इस कारण रोगों से बचने का तो एकमात्र उपाय देहातीत होना है। जब तक संसार में जन्म-मरण है तब तक कोई भी इन व्याधियों से नहीं बच सकता।

राजा श्रीपाल और चक्रवर्ती सनतकुमार जैसे पुण्य पुरुष कोड़ से पीड़ित रहे तद्भव मोक्षगामी उपसर्गजयी मुनि पुंगव सुकमाल, सुकौशल का आत्म साधना की दशा में सियाल और शेरनी ने खाया। उन सब पुण्य पुरुषों की अपेक्षा हमें क्या दुःख है? कुछ भी नहीं। यही सब सोचकर समता रखता था।

यह भी विचार आता था कि यह तो क्षणिक पर्याय है, एक क्षण में पलटेगी और पीड़ा कम हो जायेगी। इस आशा में वह पीड़ा सह लेता था। अधिकांश तो उस पीड़ा पर से उपयोग हटाने हेतु देहातीत भगवान की भक्ति के गीत गुन-गुनाता रहता, स्तोत्र स्तुतियाँ पढ़ा करता। सिद्ध भगवन्तों की पूजा-पाठ किया करता। यद्यपि वेदना से बचने का सबसे सशक्त साधन स्वाध्याय है, परन्तु वह समता के द्वारा संचालित सामूहिक स्वाध्याय में तो सम्मलित नहीं हो पाता; फिर भी उनके कैसिट सुनकर साम्य भाव से समय का सदुपयोग करता।

बस इसी तरह धीरे-धीरे रोग क्षय होता गया, साथ ही राग भी क्षीण होता रहा और अब ऐसा महशूस करने लगा कि ह्न ''मैं पूर्ण तन्दुरुस्त और श्रद्धा से पूर्ण स्वस्थ हूँ।'' चारित्रगुण में विशुद्धि की कमी के कारण अभी मुनिश्री सुकुमाल और मुनिश्री सुकौशल की श्रेणी में नहीं आ पा रहा हूँ; परन्तु भावना यही है कि ह्न

कब धन्य सुअवसर पाऊँ जब निज में ही रम जाऊँ

तथा प्रतीक्षा है कि ह्न 'वह धन्य घड़ी कब आयेंगी, जब मैं मुनिराज बनके वन में विचरूँगा।'

जीवराज के इस प्रकार के उत्तम विचारों से कर्मकिशोर न केवल प्रभावित हुआ, उसकी आँखें आसुओं में भीग गई। उसने धन्यवाद देते हुए आंसुओं की बूँदों से उसके चरणों का प्रक्षाल किया और श्रद्धाभक्ति से नमन कर जीवराज को आश्वस्त किया कि जब तक आप इस संसार में है, हमारी पुण्य की पार्टी आपकी सेवा में सदा समर्पित हैं, आप हमें सेवा का अवसर प्रदान करते रहें। हमारी पार्टी आपके अनुकूल सुखद संयोग मिलाते ही रहेगी।

इसप्रकार जीवराज और कर्मकिशोर के सुखद-संवाद के साथ बात पूरी हुई।

अधिकांश धर्मप्रेमी इतना तो अनेक बार कर चुके; फिर भी अब तक उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ा; क्योंकि उनकी भूल यह होती है कि वे इस प्राथमिक पृष्ठभूमि को ही धर्म की क्रिया मानकर संतुष्ट हो जाते हैं।

उदाहरणार्थ जैसे कोई कृषक खेत को जोतें, उसकी घास उखाड़े, खाद-पानी डालें, चारों ओर बाढ़ लगाये। इसतरह खेत को बीज बोने योग्य बनाकर भी उसमें बीज डालना भूल जाये तो क्या उसे समय पर फसल (अनाज) की प्राप्ति होगी? ठीक उसी प्रकार जीव प्राथमिक सभी धर्माचरण करे और स्वाध्याय से प्राप्त होने योग्य वस्तुस्वातंत्र्य के सिद्धान्त को न समझे। नींव के पत्थर का शिलान्यास ही न करे तो मुक्ति का महल किसके आधार पर खड़ा करेगा?

वस्तुस्वातंत्र्य का सिद्धान्त एवं उसके पोषक कारण-कार्य के चार अभाव, पाँच समवाय, षट्कारक आदि ही तो वे आधार शिलायें हैं, जिसपर मोक्षमहल का निर्माण होता है। अतः इन सबको जानकर श्रद्धान करना एवं तदनुकूल धर्माचरण करना ही तो धर्म का मूल है। इनकी यथार्थ प्रतीति से उपयोग की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी होने लगेगी, फिर हम समस्त कर्तृत्व के भार से निर्भार हो जायेंगे।

वस्तुतः यह धर्माचरण साधन है, साध्य नहीं है। साध्य तो एकमात्र शुद्धात्मा, कारण परमात्मा है, एतदर्थ मुक्तिमहल के नींव के पत्थर वस्तु स्वातंत्र्य का यथार्थ ज्ञान-श्रद्धान होना हमारी प्राथमिक आवश्यकता है। उसकी प्राप्ति हेतु जो भी त्याग करना होगा हम करेंगे और इस जीवन में मुक्ति महल का शिलान्यास करके ही दम लेंगे।

समता जीवराज की अपेक्षा धर्म के क्षेत्र में बहुत आगे हैं, उसे बचपन से ही धार्मिक संस्कार मिले हैं। उसने नियमित सामूहिक स्वाध्याय में सम्मलित होकर खूब तत्त्वाभ्यास किया है। अतः वह अपने विचारों में सदैव दृढ़ रही है। इतना होते हुए भी उसे अपने ज्ञान का किंचित् भी गुमान नहीं है। वह मधुरभासी तो है, लोक व्यवहार में भी चतुर है। अपने से बड़े सम्माननीय पति, सास, श्वसुर आदि पारिवारिक जनों की मान-मर्यादा का पूरी तरह ध्यान रखती है।

जीवराज को धर्मज्ञान की शिक्षा अपनी धर्मपत्नी समता से ही मिली है, अतः उसे अपनी पत्नी को भी गुरु का दर्जा देने में, गुरु का आदर देने में जरा भी संकोच नहीं है। वह इस विषय में बहुत खुले विचारों का व्यक्ति है। अतः समता और जीवराज एक-दूसरे को खूब सम्मान देते हैं। एक दूसरे के साथ विचार-विमर्श करके धर्मप्रचार की नई-नई योजनायें बनाते हैं। ●

परिशिष्ट

वस्तुस्वातंत्र्य एवं उसकी सिद्धि में हेतुभूत विषयों के कुछ महत्वपूर्ण आगम आधार

वस्तुस्वातंत्र्य सम्पूर्ण जैन वांगमय का ही एक (पर्यायवाचक) नाम है; क्योंकि इस सिद्धान्त में ही जैनवांगमय में प्रतिपादित छहों द्रव्य, उनके अनन्तगुण एवं उनके स्वतंत्र परिणमन के हेतुभूत कारण-कार्य, कर्ता-कर्म, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, चार अभाव, पाँच समवाय, षट्कारक, सात तत्त्व, नव पदार्थ के रूप में सम्पूर्ण विश्व समाहित है। और यही मुख्यतया सम्पूर्ण वांगमय का वह प्रतिपाद्य विषय है जिससे वीतराग धर्म की उपलब्धि सहज हो जाती है।

वस्तुस्वातंत्र्य किसी दर्शन विशेष की अवधारणा या विचार मात्र नहीं है, बल्कि यह वस्तुस्थिति है, वास्तविक वस्तुगत विश्वव्यवस्था है। यह वस्तु व्यवस्था अनादि निधन, स्वाधीन, स्वतंत्र, स्वावलम्बी एवं स्वयं संचालित है।

उपर्युक्त वस्तुस्वातंत्र्य के यथार्थ निर्णय और सम्यक्श्रद्धा से आध्यात्मिक लाभ यह है कि जो जीव अब तक स्वयं को पर का कर्ता और पर को स्वयं के सुख-दुःख का दाता मानकर राग-द्वेष से मुक्त नहीं हो पा रहे थे तथा इस कर्तृत्व के भार से निर्भार होकर अन्तर्मुख नहीं हो पा रहे थे, वे इस सिद्धान्त की यथार्थ समझ से कर्तृत्व के भार से मुक्त होकर आत्मा का ध्यान कर अल्पकाल में ही स्वयं परमात्म पद प्राप्त कर सकते हैं। आगम इसका साक्षी है। वस्तु स्वातंत्र्य के साधक कारणों के कतिपय आगम उल्लेख इसप्रकार हैं ह्न

वस्तु स्वातंत्र्य सिद्धान्त आगम के आलोक में :ह्न 'वस्तुस्वातंत्र्य' सिद्धान्त के संदर्भ में **पंचाध्यायी** पूर्वार्द्ध गाथा १४३ में 'वस्तु' शब्द के पर्यायवाची नामों में वस्तु, सत्ता, द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ, अर्थ, सामान्य, अन्वयी, धर्मी आदि को एक ही अर्थ का वाचक कहा है।

सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थ में सत् को अस्तित्व का सूचक कहा है तथा नियमसार गाथा ३४ की तात्पर्यवृत्ति टीका में अस्तित्व को सत्ता कहा है और पंचाध्यायी पूर्वार्द्ध गाथा ८ में 'सत्तालक्षण युक्त वस्तु को अनेक विशेषताओं से युक्त माना है, जो वस्तु के स्वतंत्र स्वरूप का बोध कराता है। इसी ग्रन्थ में तत्काल बाद गाथा ९ से १४ में यह कहा है कि 'वह सत्ता विनाश रहित अनादि है, अनिधन है, स्व-सहाय है और निर्विकल्प है। इसप्रकार सत्ता या द्रव्य उक्त लक्षणों से युक्त होने से पूर्णतया स्वतंत्र व स्व-सहाय है। तथा ये छहों द्रव्य एक साथ आकाशद्रव्य के लोकाकाश में अपने-अपने स्व-चतुष्ट्य के साथ रहते हुए स्वतंत्र रूप से अपना-अपना कार्य करते रहते हैं।

कर्त्ता-कर्म :ह्न समयसार परमागम का कर्त्ता-कर्म अधिकार और सर्वविशुद्ध अधिकार में समस्त पर-कर्तृत्व का निषेध एवं स्व-कर्तृत्व का ही समर्थन हैं।

प्रत्येक द्रव्य अपनी परिणति का स्वयं कर्त्ता है। उसके परिणमन में पर का रंचमात्र भी हस्तक्षेप नहीं है। स्वयं का कर्तृत्व होने पर भी अपने कर्तृत्व का भार बिल्कुल नहीं है; क्योंकि वह परिणमन भी सहज है।

कर्त्ता का अर्थ :ह्न व्याकरण शास्त्र में कर्त्ता का तात्पर्य है 'कार्य का जनक' है, पाणिनि व्याकरण में 'स्वतंत्रः कर्त्ता' और कातंत्र व्याकरण सूत्र ३८० में 'यः करोति स कर्त्ता' अर्थात् जो स्वतंत्रतापूर्वक कार्य को करे या जो क्रिया का जनक हो, वह कर्त्ता है।

● समयसार कलश ५१ में अमृतचंद ने कर्त्ता का स्वरूप इस प्रकार लिखा है कि ह्न 'यः परिणमति स कर्त्ता' अर्थात् जो स्वयं कार्यरूप परिणमित हो वह कर्त्ता है।

● प्रवचनसार गाथा १८४ की तत्त्व प्रदीपिका टीका में इस प्रकार कहा है कि ह्न 'स्वतंत्रः कुर्वाणस्तस्य कर्त्ता अवश्यं स्यात्' अर्थात् वह उसको (कार्य को) स्वतंत्रतापूर्वक करता हुआ उसका कर्त्ता अवश्य है। जैसे ह्न मिट्टी घट की कर्त्ता है और घट उसका कर्म है; क्योंकि मिट्टी स्वतंत्रतया घटरूप परिणमन करती है।

कर्म का अर्थ :ह्न कातंत्र व्याकरण सूत्र ३८१ में कर्म का अर्थ इस प्रकार परिभाषित किया है कि ह्न 'यत्क्रियते तत्कर्म' अर्थात् कर्त्ता के द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है।

● राजवार्तिक अध्याय ६ सूत्र १ के अनुसार ह्न 'कर्तु क्रियया आप्तुमिष्टतमं कर्म' कर्त्ता की क्रिया के द्वारा जो प्राप्त करने योग्य इष्ट होता है उसे कर्म कहते हैं।

● भगवती आराधना की भाग १ गाथा २० की विजयोदया टीका पृष्ठ ४२ में लिखा है कि ह्न 'कर्तु क्रियाया व्यापत्वेन विवक्षितमपि कर्म' अर्थात् कर्त्ता की होनेवाली क्रिया के द्वारा जो व्याप्त होता है, वह कर्म कहलाता है।

● समयसार कलश ५१ एवं प्रवचनसार गाथा ११७ की तत्त्वदीपिका की टीका में भी यह लिखा है कि 'यः परिणामो भवेत तत्कर्म' तथा 'क्रियाखल्वात्मना प्राप्यत्वकर्म' अर्थात् परिणमन होनेवाले कर्त्तारूप द्रव्य का जो परिणाम है, वह उसका कर्म है तथा क्रिया वास्तव में कर्त्ता के द्वारा प्राप्त होने से हैं।

यहाँ ज्ञातव्य है कि ह्न वैसे कर्म शब्द के अनेक अर्थ होते हैं ह्न जैसे कि ह्न 'घटं करोति' में **घट** शब्द कर्म कारक के अर्थ हैं। 'कुशलाकुशलं कर्म' में **कर्म** शब्द पुण्य-पाप के अर्थ में आता है; किन्तु यहाँ **कर्म** शब्द कर्त्ता की क्रिया, कार्य, परिणति, परिणमन अथवा परिणाम के अर्थ में लिया गया है। **(क्रमशः)**

लोक में दानियों से अधिक सन्मान त्यागियों का होता है और वह उचित भी है; क्योंकि त्याग शुद्धभाव है और दान शुभ भाव; त्याग धर्म है और दान पुण्य।

हत्या से भी बड़ा पाप : भ्रूण हत्या
एक मार्मिक अपील

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(दिनांक 13 से 19 जनवरी, 2006 तक सागर (म.प्र.) में हुये पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में गर्भकल्याणक के अवसर पर भ्रूण हत्या से संबंधित डॉ. भारिल्ल द्वारा दिये गये मार्मिक उद्‌बोधन का महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। ह्न प्रबन्ध सम्पादक)

यह तो आपको पता ही होगा कि हमारे देश में अभी-अभी विगत दिनों में 1 करोड़ कन्याओं को पैदा होने से पहले गर्भ में ही मार डाला गया; जिसके कारण भारत वर्ष में लड़कों से लड़कियाँ 1 करोड़ कम हो गई हैं, लड़के-लड़कियों का अनुपात बिगड़ गया है। यदि स्थिति ऐसी ही रही तो अनेक सामाजिक समस्यायें खड़ी हो सकती हैं।

ये भ्रूण हत्यायें चाहे ऑपरेशन के माध्यम से हों या किसी अन्य साधन से हों; ऐसा महान पाप हैं कि जिसकी तुलना में कोई भी हत्या खड़ी नहीं हो सकतीं; क्योंकि ये हत्यायें असहाय बालिकाओं की माँ-बाप की प्रेरणा से डाक्टरों द्वारा की जाती हैं।

यह तो आप जानते हैं कि यदि बच्चों को कोई मारे तो वे माँ को ही पुकारते हैं। बच्चे ही क्यों बुजुर्ग को भी कोई तकलीफ हो तो उसके मुँह से 'माँ' शब्द ही निकलता है। माँ में बच्चों को इतना विश्वास होता है कि वह हर संकट में माँ को ही संकटमोचक समझते हैं। यदि माँ मारे तो उनकी दृष्टि पिता पर जाती है। वे माँ की शिकायत पिता से करते हैं। और यह सब यों ही नहीं होता; क्योंकि माँ-बाप जीवन भर उनकी सुरक्षा करते हैं, उनके लिये सभी सुविधायें जुटाते हैं; स्वयं भूखे रहकर भी उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं; अपना पेट काटकर भी उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होने देते; उन पर सर्वस्व समर्पण कर देते हैं।

माँ-बाप बालक-बालिकाओं के सबसे बड़े संरक्षक और पूर्णतः विश्वसनीय होते हैं। इसीप्रकार जब बालक बीमारी से दुखी होता है, मृत्यु के मुख में पहुँच जाता है; तो हम उसे डॉक्टर के पास ले जाते हैं और डॉक्टर उनकी सभी तकलीफों को दूर करने का प्रयत्न सच्चे दिल से करते हैं।

यही कारण है कि हम सब डॉक्टर को अपना शरीर सौंप देते हैं। वह ऑपरेशन करके हमारे शरीर की कितनी भी चीड़-फाड़ क्यों न करे; हम पूर्णतः आश्वस्त रहते हैं, उसे अपना संकटमोचक ही समझते हैं।

इसप्रकार माँ-बाप और डॉक्टर ह्न ये तीनों सर्वाधिक विश्वसनीय संरक्षक हैं। इन पर सभी का भगवान से भी अधिक भरोसा होता है; यही कारण है कि कोई भी संकट क्यों न हो; बच्चे माँ-बाप के पास दौड़ते हैं और कोई भी तकलीफ क्यों न हो, सारी दुनियाँ डॉक्टरों के पास अस्पताल जाती है, भगवान के मंदिर नहीं।

यदि माँ-बाप और डॉक्टर ह्न ये सभी मिलकर मारने को तैयार हों; तो फिर असहाय बालिकायें किसकी शरण में जावें? जब रक्षक ही भक्षक हो जावें तो समझ लीजिए कि अब प्रलय होनेवाली है।

जिस डॉक्टर ने डॉक्टरी आरंभ करने के पहले ही जो मरीज उनके पास आवे, उनकी रक्षा करने की कसम खाई हो; जब वही निर्दयता पूर्वक मारने पर उतारू हो जावे तो लोग आखिर किसकी शरण में जावेंगे?

अपनी ही असहाय संतान के माँ-बाप और बचाने की कसम खाने वाले डाक्टर ही मारने लग जावे, हत्या करने पर उतारूँ हो जाये तो फिर ..।

बालक, नारी, शस्त्रविहीन, शरण में आये हुये पराधीन असहायों पर कोई वीर प्रहार नहीं करता; वीर तो शत्रु को जगाकर, सावधान कर, उसके हाथ में तलवार देकर उस पर वार करते हैं, उसके साथ युद्ध करते हैं और हार मान लेने पर, शरणागत हो जाने पर प्राणपण उसकी रक्षा करते हैं।

गर्भस्थ बालिका तो नारी है, बालिका है, निशस्त्र है, शरणागत है, असहाय है और आपके आधीन है; उसकी हत्या करना ऐसा जघन्य अपराध है कि उसकी तुलना किसी भी बड़े से बड़े पाप से नहीं की जा सकती और वह भी जब माँ-बाप के अनुरोध से डॉक्टर द्वारा की जावे तो फिर उसे क्या कहें ?

गर्भपात के समय जिस क्रूरता से बालिकाओं को मारा जाता और वे किसप्रकार तड़पती हैं, अपने को बचाने की कोशिश करती हैं, उस दृश्य की फिल्म बनाई गई है। उसे आप देख भी नहीं सकते। उसे देखते समय आपके रोंगटे खड़े हो जायेंगे, आप बेहोश हो जावेंगे।

कहते हैं कि नरक सात ही होते हैं; पर चौदह भी होते तो इन हत्यारों को वहाँ भी जगह नहीं मिलती। यह इतना बड़ा अपराध है कि जिसकी तुलना किसी भी अपराध से नहीं की जा सकती और न कोई सजा ही सुनिश्चित की जा सकती है; क्योंकि हम जो भी सजा निर्धारित करेंगे; वह इसकी तुलना में नगण्य ही होगी, ऊँट के मुह में जीरा ही होगी।

कुछ लोग कहते हैं कि हमने चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है। भारतवासियों की एवरेज आयु पहले 27 वर्ष थी और अब 67 वर्ष हो गई है।

अरे, भाई ! यह आँकड़ों का खेल है। पहले बच्चों की मौतें बहुत होती थीं। इसकारण हमारी एवरेज आयु कम हो जाती थी; किन्तु आज हम उन्हें गर्भ में ही मार देते हैं, पैदा ही नहीं होने देते; अतः वे हमारी एवरेज आयु को कम नहीं कर पाते; क्योंकि जनसंख्या में उनकी गिनती ही नहीं होती। यदि उन्हें भी शामिल कर लें तो हो सकता है हमारी एवरेज आयु 27 से भी कम हो जावे।

पहले बच्चे मरते थे, अपने आप मरते थे; पर अब हम मार देते हैं। मरना हत्या नहीं है, पर मारना हत्या है, माँ-बाप की सहमति से डॉक्टर द्वारा की गई हत्या नृसंश हत्या है।

छोटी आयु में मरने वाले बालकों को अन्तिम साँस तक बचाने का यत्न किया जाता था। साधनों के अभाव में भले ही हम उन्हें बचा नहीं पावें, पर हमारी ओर से प्रयत्न तो पूरा किया ही जाता था; पर आज तो सगे माँ

बाप और डॉक्टरों द्वारा उन्हें माँ के पेट में ही मार दिया जाता है।

बालिकाओं की हत्याओं में सबसे बड़ा कारण यह है कि हम यह समझते हैं कि लड़कियाँ तो एक दिन अपने घर चली जावेगी; पर लड़के सारी जिन्दगी हमारे साथ रहेंगे, हमारी सेवा करेंगे, बुढ़ापे का सहारा होंगे; पर यह सब हमारा भ्रम ही है; क्योंकि आजकल जिन्दगी भर न लड़के साथ रहते हैं और न लड़कियाँ ही रहती हैं। यदि लड़की शादी होने पर 25 वर्ष की उम्र में जावेगी तो लड़का पढ़ने के बहाने 16 वर्ष की आयु में ही चला जावेगा। एकदफे गया सो वापिस आने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। जहाँ नौकरी मिलेगी, वहाँ जायेगा; जहाँ व्यापार होगा, वहाँ जायेगा। अधिक होशियार हुआ तो अमरीका चला जावेगा।

यदि अमेरिका चला गया तो मरने के बाद क्रियाकर्म करने को भी न आ पावेगा। होशियार बच्चों के अनेकों माँ-बाप को एकाकी नीरस जीवन बिताते मैंने अपनी आँखों से देखा है।

इसलिए हमें अपने मन में से इस बात को निकाल देना चाहिये कि लड़के बुढ़ापा का सहारा बनेंगे, लड़कियाँ नहीं।

संतान माँ के गर्भ में ही न आवे ह्न यह अलग बात है और गर्भ रह जाने के बाद उसे गिरा देना अलग बात है। गर्भ में संतान का नहीं आना हिंसा नहीं है, हत्या नहीं है; पर सन्तान के गर्भ में आ जाने पर गर्भपात कराना हिंसा है, हत्या है, नृशंस हत्या है। अधिक क्या कहें - यह ऐसा महापाप है कि जिसके सामने सभी पाप फीके पड़ जाते हैं। अतः यदि आप चाहते हैं कि हमारे अधिक सन्तान न हो तो आप गर्भ रहने ही न दीजिये।

यदि आप यह काम संयम से कर सके तो इससे अच्छी तो कोई बात हो ही नहीं सकती; पर यदि किसी भी स्थिति में आपके लिए यह संभव न हो तो भले ही आप किसी कृत्रिम साधन से ऐसा करें, पर करें अवश्य; क्योंकि उसमें कोई हिंसा या हत्या का पाप नहीं है; पर .....।

ऐसा करने पर लड़का-लड़की में भेद करना भी संभव न होगा।

मैं सभी सम्बन्धित लोगों से हृदय की गहराई से अपील करता हूँ कि आप इस महापाप से अपने को बचायें। यह भी ध्यान रखें कि जैनदर्शन में कृत, कारित और अनुमोदना का पाप समान होता है, कर्म का बंध भी तीनों को समान ही होता है। अतः न तो हमें स्वयं यह महापाप करना चाहिए और न दूसरों को ऐसा करने की प्रेरणा देना चाहिये। यदि कोई ऐसा काम करता है तो उसकी अनुमोदना भी नहीं करना चाहिये। काया से करने की बात तो बहुत दूर, वाणी से भी इसका समर्थन नहीं करना चाहिए, ऐसा करने का उपदेश भी नहीं देना चाहिए। अधिक क्या कहें ह्न ऐसा भाव हमारे मन में भी पैदा नहीं होना चाहिए।

इसप्रकार इस महापाप का मन-वचन-काय और कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना चाहिए। इसी में हम सबका भला है और समाज का भला भी इसी में है। ●

प्रतियोगितायें सम्पन्न

बांसवाड़ा (राज.) : श्री ज्ञायक चैरिटेबल एवं ज्ञायक पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा संस्थापित आचार्य अकलंक शिक्षण संस्थान में अन्तर्विद्यालयीन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतियोगितायें दिनांक २९ जनवरी, २००६ को सम्पन्न हुई।

प्रतियोगिताओं में भाग लेने हेतु गनोड़ा, लोहारिया, सावला, अरथूना, बांसवाड़ा के जैनदर्शन विषय में अध्ययनरत ६० छात्रों ने अन्ताक्षरी, कण्ठपाठ, भजन, नृत्य, नाटक प्रतियोगिताओं में भाग लिया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री बदमीलालजी बोहरा ने की। विशिष्ट अतिथि श्री महीपालजी ज्ञायक व श्री धनपालजी ज्ञायक तथा निर्णायक मण्डल में श्री भरतजी शाह एवं पण्डित सुनीलजी शास्त्री थे।

प्रतियोगिताओं से नित्य-नियम पूजन व श्री सम्मेदशिखर विधान के पश्चात् पण्डित राजकुमारजी शास्त्री का उद्बोधन प्राप्त हुआ।

सम्पूर्ण कार्यक्रम पण्डित राजकुमारजी के संयोजकत्व में पण्डित निलयजी शास्त्री व पण्डित गणतंत्रजी शास्त्री द्वारा संचालित किये गये। **ह्न ममता जैन**

पाण्डुलिपि संरक्षण हेतु वार्ता व प्रदर्शनी

हस्तलिखित ग्रन्थ(पाण्डुलिपियाँ) भारत की अपार और मूल्यवान सम्पत्ति है। मानवीय उपेक्षा और काल के प्रभाव से सैकडों वर्ष पुरानी इन पाण्डुलिपियों की सार-संभाल में कमी हुई हैं। यह पाण्डुलिपियाँ आज जर्जर अवस्था में पहुँच रही है। यदि इस अमूल्य ज्ञान सम्पदा को सुरक्षित नहीं रखा गया तो हमारी सांस्कृतिक धरोहर सदैव के लिये विलुप्त हो जायेगी और हम आनेवाली पीढ़ी को यह अनमोल विरासत देने से वंचित रह जायेंगे।

पुरामहत्त्व की यह पाण्डुलिपियाँ हमारे मन्दिरों, ग्रन्थागारों, पुस्तकालयों में है, साथ ही निजी व्यक्तिओं के पास भी उपलब्ध हैं; परन्तु उचित देखभाल व रखरखाव के अभाव में यह नष्ट हो रही हैं। पाण्डुलिपियाँ ही किसी सभ्य समाज और देश का दर्पण होती है, इन्हें बचाना हमारा परम कर्तव्य है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन योजनान्तर्गत स्वीकृत पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र द्वारा **दिनांक 28 फरवरी, 2006 को प्रात: 9 बजे से सायंकाल 5 बजे तक** पाण्डुलिपि दिवस के रूप में प्रदर्शनी एवं वार्ता का आयोजन श्री कुन्दकुन्द भवन, भट्टारकजी की नसियाँ, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर में किया जा रहा हैं।

इससे पूर्व राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन अन्तर्गत श्री दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियाँन, घी वालों का रास्ता, जौहरी बाजार जयपुर में तीन दिवसीय नि:शुल्क कार्यशाला दिनांक 29 जनवरी को सम्पन्न हुई; जिसमें 18 प्रशिक्षणार्थियों को पाण्डुलिपि संरक्षण के कार्य में लगे हुये विशेषज्ञों द्वारा पाण्डुलिपि के संरक्षण की जानकारी दी गई। **ह्न कमलचन्द सोगाणी**

वीतराग की वाणी वीतरागता की ही पोषक होती है। जिन शास्त्रों में वीतरागता का पोषण हो, वे सच्चे शास्त्र हैं। विषय-कषाय के पोषक, विषय-कषाय में सुख बतानेवाले शास्त्र, शास्त्र नहीं; शस्त्र हैं, संसार में डुबोनेवाले हैं। **ह्न सत्य की खोज, पृष्ठ : 79**

प्रवचनसार का सार

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

तदनन्तर शुभोपयोग का स्वरूप कहनेवाली १५७वीं गाथा इसप्रकार है ह्न

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तदेव अणगारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ।।१५७।।

(हरिगीत)

श्रद्धान सिध-अणगार का अर जानना जिनदेव को।
जीवकरुणा पालना बस यही है उपयोग शुभ ।।१५७।।

जो जिनेन्द्रों को जानता है, सिद्धों तथा अनागारों की (आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुओं की) श्रद्धा करता है और जीवों के प्रति अनुकम्पायुक्त है; उसका वह शुभ उपयोग है।

गाथा के अर्थ की प्रथम पंक्ति में जो यह लिखा है कि जो जिनेन्द्रों को जानता है ह्न इसी भाव को प्रदर्शित करनेवाली इसी प्रवचनसार की गाथा ८० की प्रथम पंक्ति है, जो कि निम्नानुसार है ह्न

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।

जो अरहंत भगवान को द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व से जानता है....।

सिद्धों तथा अनागारों की श्रद्धा करने का तात्पर्य उनको जानना ही है; क्योंकि कहीं **पेच्छदि** शब्द लिख देते हैं और कहीं **जाणदि**। अनगार शब्द का तात्पर्य ऋषि-मुनि ही है। इसप्रकार इस गाथा में पंचपरमेष्ठी की ही बात है। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ पंचपरमेष्ठी की भक्ति के भाव को शुभोपयोग नहीं कहा, अपितु उन्हें जानने-देखने को शुभोपयोग कहा है। जब पंचपरमेष्ठी की ओर उपयोग जाने का नाम ही शुभोपयोग है; तब भक्ति की तो बात ही क्या करना ?

भक्ति के नाम पर भगवान से कुछ माँगना, उनसे कुछ करने का अनुरोध करना भक्ति नहीं है, अपितु भिखारीपन है।

नाटक समयसार में भक्ति का यथार्थ स्वरूप इसप्रकार लिखा है ह्न

कबहू सुमति ह्वै कुमति कौ विनास करै,
कबहू विमल जोति अंतर जगति है।
कबहू दयाल ह्वै चित्त करत दयालरूप,
कबहू सुलालसा ह्वै लोचन लगति है।।
कबहू आरती ह्वै कै प्रभु सनमुख आवै,
कबहू सुभारती ह्वै बाहरि वगति है।
धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी,
हिरदै हमारै भगवंत की भगति है।।१४।।

हमारे हृदय में भगवान की ऐसी भक्ति है जो कभी तो सुबुद्धिरूप होकर कुबुद्धि को हटाती है, कभी निर्मल ज्योति होकर हृदय में प्रकाश डालती है, कभी दयालु होकर चित्त को दयालु बनाती है, कभी अनुभव की पिपासारूप होकर नेत्रों को थिर करती है, कभी आरतीरूप होकर प्रभु के सन्मुख आती है, कभी सुन्दर वचनों में स्तोत्र बोलती है; जब जैसी अवस्था होती है, तब तैसी क्रिया होती है।

इसप्रकार बनारसीदासजी ने जिनवाणी के पढने को, जिनेन्द्रदेव के अनुसार चलने को भी जिनेन्द्रदेव की भक्ति कहा है। खान-पान में भक्ष्याभक्ष्य का विचार रखना भी जिनेन्द्रदेव की भक्ति है। प्रवचन सुनना भी जिनेन्द्रदेव की भक्ति है।

अरे भाई। आलू में अनंत जीव होते हैं ह्न यह जिनेन्द्र भगवान का वचन जानकर आलू नहीं खाना भी जिनेन्द्रदेव की भक्ति है। आलू में अनंत जीव होते हैं ह्न यह किसने देखा ? ह्न ऐसा कहना जिनेन्द्र भगवान की सबसे बड़ी अभक्ति है; क्योंकि इसमें उनके कथन के प्रति अश्रद्धा का भाव है।

इसप्रकार, जो जिनेन्द्रों को जानता है, सिद्धों तथा अनागारों की (आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुओं की) श्रद्धा करता है, और जीवों पर दयाभाव रखता है, उसका नाम शुभोपयोग है।

इसके बाद आचार्यदेव अशुभोपयोग का स्वरूप प्ररूपित करते हैं ह्न

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ।।१५८।।

(हरिगीत)

अशुभ है उपयोग वह जो रहे नित उन्मार्ग में।
श्रवण-चिंतन-संगति विपरीत विषयकषाय में ।।१५८।।

जिसका उपयोग विषय-कषाय में अवगाढ (मग्न) है; कुश्रुति, कुविचार और कुसंगति में लगा हुआ है; उग्र है तथा उन्मार्ग में लगा हुआ है; उसका वह उपयोग अशुभोपयोग है।

इसप्रकार शुभ और अशुभोपयोग के कारण देह का संयोग होता है ह्न यह बताने के लिए आचार्यदेव ने शुभोपयोग एवं अशुभोपयोग का स्वरूप इस अधिकार में लिखा है।

यह अधिकार न तो शुभभावाधिकार है और न ही शुभोपयोगाधिकार; क्योंकि ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार में ही शुभभावाधिकार निकल चुका है और शुभोपयोगाधिकार बाद में आएगा। यह अधिकार तो ज्ञानज्ञेय-विभागाधिकार है।

यहाँ यह कहा गया है कि शुभोपयोग और अशुभोपयोग के कारण देह और आत्मा का संयोग हुआ है। इसी सन्दर्भ में परद्रव्य के संयोग के कारणरूप शुभोपयोग और अशुभोपयोगरूप अशुद्धोपयोग के विनाश का स्वरूप बतानेवाली गाथा १५९ की टीका भी द्रष्टव्य है; जो इसप्रकार है ह्न

''जो यह, (१५६वीं गाथा में) परद्रव्य के संयोग के कारणरूप में कहा गया अशुद्धोपयोग है, वह वास्तव में मन्द-तीव्र उदय दशा में रहने वाले परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन होने से ही प्रवर्तित होता है; किन्तु अन्य कारण से नहीं। इसलिए यह मैं समस्त परद्रव्य में मध्यस्थ होऊँ और इसप्रकार मध्यस्थ होता हुआ मैं परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन न होने से शुभ अथवा अशुभ ऐसा जो अशुद्धोपयोग उससे मुक्त होकर, मात्र स्वद्रव्यानुसार परिणति को ग्रहण करने से जिसको शुद्धोपयोग सिद्ध हुआ है, ऐसा होता हुआ, उपयोगात्मा द्वारा (उपयोगरूप निजस्वरूप से) आत्मा में ही सदा निश्चल रूप से उपयुक्त रहता हूँ। यह मेरा परद्रव्य के संयोग के कारण के विनाश का अभ्यास है।''

टीका में उल्लिखित परद्रव्य में मध्यस्थ होऊँ का तात्पर्य यह है कि मैं परद्रव्यों को विनष्ट करने का, कर्मों को नाश करने का भी भाव नहीं रखूँ। टीका में अन्त में जो यह कहा कि यह परद्रव्य के संयोग के कारण के विनाश का अभ्यास है ह्न यह उन्होंने शुद्धोपयोग का लक्षण ही कहा है। परद्रव्य मैं नहीं हूँ एवं मैं तो भगवान आत्मा ज्ञानानंद स्वभावी हूँ ह्न ऐसा जो

अभ्यास है; वह शुद्धोपयोग है और यह शुद्धोपयोग ही परद्रव्यों से छूटने का उपाय है। शुभोपयोग और अशुभोपयोग तो संसार में उलझानेवाले हैं।

इसप्रकार यहाँ यह सिद्ध कर दिया कि देह के संयोग का कारण शुभोपयोग व अशुभोपयोग है।

इसके बाद आचार्यदेव शरीरादि परद्रव्य के प्रति भी मध्यस्थपना प्रगट करते हैं ह्न

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।१६०।।

(हरिगीत)

देह मन वाणी न उनका करण या कर्ता नहीं।
ना कराऊँ मैं कभी भी अनुमोदना भी ना करूँ।।१६०।।

मैं न देह हूँ, न मन हूँ और न वाणी हूँ; उनका कारण नहीं हूँ, कर्त्ता नहीं हूँ, करानेवाला नहीं हूँ और कर्त्ता का अनुमोदक भी नहीं हूँ।

इस गाथा में देह, मन और वाणी ह्न इन तीनों से एकत्व तोड़ने की बात कही है। ध्यान रहे यहाँ पर राग से एकत्व तोड़ने की बात नहीं कही; लेकिन मैं ऐसा भी नहीं कहना चाहता कि राग से एकत्व नहीं तोड़ना; पर बात यह है कि जिस गाथा में जिसका वर्णन आया हो ह्न वहाँ वही बात कहनी चाहिए। मैं शरीरादि परद्रव्यों का न कर्त्ता हूँ, न कारयिता हूँ और न अनुमन्ता हूँ; इसप्रकार शरीरादि परद्रव्यों के प्रति कृत, कारित एवं अनुमोदना से एकत्व तोड़ने की बात इस गाथा में कही गई है; रागादिक से एकत्व तोड़ने की नहीं।

शरीर, वाणी और मन का परद्रव्यपना निश्चित करनेवाली १६१वीं गाथा इसप्रकार है ह्न

देहो य मणो वाणी पोग्गलदव्वप्पग त्ति णिद्दिट्ठा।
पोग्गलदव्वं हि पुणो पिंडो परमाणुदव्वाणं।।१६१।।

(हरिगीत)

देह मन वच सभी पुद्गल द्रव्यमय जिनवर कहे।
ये सभी जड़ स्कन्ध तो परमाणुओं के पिण्ड हैं।।१६१।।

देह, मन और वाणी पुद्गलद्रव्यात्मक हैं ह्न ऐसा वीतरागदेव ने कहा है और वे पुद्गलद्रव्य परमाणुद्रव्यों का पिण्ड हैं।

इस गाथा में यह स्पष्ट किया गया है कि जो स्कन्ध हमें दिखाई देते हैं; वे परमाणुओं के पिण्ड हैं। इसप्रकार यह शरीर भी पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड है। इसके बाद आत्मा के परद्रव्यत्व का अभाव और परद्रव्य के कर्तृत्व का अभाव सिद्ध करते हैं ह्न

णाहं पोग्गलमइओ ण ते मया पोग्गला कया पिंडं।
तम्हा हि ण देहोऽहं कत्ता वा तस्य देहस्य।।१६२।।

(हरिगीत)

मैं नहीं पुद्गलमयी मैंने ना बनाया हैं इन्हें।
मैं तन नहीं हूँ इसलिए ही देह का कर्ता नहीं।।१६२।।

मैं पुद्गलमय नहीं हूँ और वे पुद्गल मेरे द्वारा पिण्डरूप नहीं किए गए हैं; इसलिए मैं देह नहीं हूँ, तथा उस देह का कर्त्ता नहीं हूँ।

इस गाथा की टीका इसप्रकार है ह्न

''प्रथम तो जो यह प्रकरण से निर्धारित पुद्गलात्मक शरीर नामक परद्रव्य है ह्न जिसके भीतर वाणी और मन का समावेश हो जाता है ह्न वह मैं नहीं हूँ; क्योंकि अपुद्गलरूप मेरा पुद्गलात्मक शरीररूप होने में विरोध है और इसीप्रकार उस (शरीर) के कारण द्वारा, कर्त्ता द्वारा, कर्त्ता के प्रयोजक द्वारा या कर्त्ता के अनुमोदक द्वारा शरीर का कर्त्ता मैं नहीं हूँ; क्योंकि मैं अनेक परमाणुओं द्रव्यों के एक पिण्ड पर्यायरूप परिणाम का अकर्त्ता ह्न ऐसा मैं अनेक परमाणुद्रव्यों के एकपिण्डपर्यायरूप परिणामात्मक शरीर का कर्त्तारूप होने में सर्वथा विरोध है।''

तात्पर्य यह है कि जो इस गाथा में शरीर की बात चल रही है, वह मात्र शरीर की ही नहीं है; अपितु प्रकरण के अनुसार उसमें मन और वाणी भी सम्मिलित हैं। इस गाथा में तो देह के संबंध में यह लिखा है कि मैं पुद्गलमयी देह नहीं हूँ, जबकि पूर्व गाथा में देह, मन और वाणी ह्न इन तीनों की चर्चा की थी; इसलिए प्रकरण के अनुसार यहाँ पर मन और वाणी का भी ग्रहण करना चाहिए।

इसप्रकार इस गाथा में आत्मा के परद्रव्यत्व का अभाव और परद्रव्य के कर्तृत्व का अभाव सिद्ध किया है।

इसके बाद गाथा १६३ से १६८ तक का जो प्रकरण है, उसमें यही बताया गया है कि यह आत्मा के साथ संबंद्ध शरीर पुद्गल परमाणुओं से स्कन्धरूप कैसे परिणमित हो गया ?

आत्मा पुद्गलपिंड को कर्मरूप नहीं करता ह्न यह बतानेवाली १६९वीं गाथा इसप्रकार है ह्न

कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा।
गच्छंति कम्मभावं ण हि ते जीवेण परिणमिदा।।१६९।।

(हरिगीत)

स्कन्ध जो कर्मत्व के हों योग्य वे जिय परिणति।
पाकर करम में परिणमें न परिणमावे जिय उन्हें।।१६९।।

कर्मत्व के योग्य स्कन्ध जीव की परिणति को प्राप्त करके कर्मभाव को प्राप्त होते हैं; जीव उनको नहीं परिणमाता।

आचार्य अमृतचन्द्र ने इसी गाथा की टीका को आधार बनाकर पुरुषार्थसिद्धयुपाय में निम्न आर्या छंद लिखे हैं ह्न

जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गला: कर्मभावेन।।
परिणममानस्य चितश्चिदात्मकै: स्वयमपि स्वकैभावै:।
भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि।।[१]

जीव के किये हुए रागादि परिणामों को निमित्तमात्र पाकर जीव से भिन्न अन्य पुद्गल स्कन्ध अपने आप ही ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन कर जाते हैं। निश्चय से अपने चेतनास्वरूप रागादि परिणामों से स्वयं ही परिणमन करते हुए पूर्वोक्त आत्मा के भी पुद्गल सम्बन्धी ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म निमित्तमात्र होता है।

''जीव ने ही ऐसे खोटे भाव करके कर्म बाँधे हैं और इन कर्मों को जीव ने निमन्त्रण दिया है, ये कर्म बिना बुलाए नहीं आए हैं; इसलिए इन कर्मों के फल का दण्ड तो जीव को भुगतना ही पड़ेगा।''

उक्त विचारों के विरुद्ध आचार्यदेव यहाँ यह कह रहे हैं कि ये कर्म जीव ने नहीं बाँधे; जीव ने तो मात्र इतनी-सी गलती की थी कि वह स्वयं को भूल गया और उसके ज्ञान में जो परपदार्थ आए, उन पदार्थों को अपना मान लिया। जीव की एकमात्र इस गलती का निमित्त पाकर कार्माण वर्गणाएं स्वयं ही कर्मरूप परिणमित होकर जीव के साथ एकक्षेत्रावगाही हो गई हैं। **(क्रमश:)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

वैराग्य समाचार

1. **म्हसरूल-नासिक निवासी** ब्र.रावजी जीवराज शाह का दिनांक १० जनवरी, ०६ को शांत परिणामों से देहावसान हो गया। आप श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर एवं श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम जैन गुरुकुल कारंजा के अधिष्ठाता थे। महाराष्ट्र प्रान्त में पाठशाला स्थापन एवं तत्त्वप्रचार-प्रसार में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान था। अच्छे स्वाध्यायी एवं समाज सेवक रहे।

2. **भोपाल निवासी** श्रीमती कमलश्रीबाई जैन ध.प. स्व. श्री डालचन्दजी जैन सर्राफ का दिनांक २८ जनवरी, २००६ को ८४ वर्ष की आयु में णमोकार मंत्र का श्रवण करते हुये देहावसान हो गया। आप श्री डालचन्द कमलश्रीबाई दि. जैन सार्वजनिक न्यास भोपाल की संस्थापिका थीं। साथ ही धर्मपरायण विदुषी महिला थीं। आपने दो बार ससंघ गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं पण्डित बाबूभाई मेहता के साथ सम्मेदशिखरजी आदि तीर्थक्षेत्रों की वंदना भी की। आपके निधन से मुमुक्षु मण्डल भोपाल को अपूरणीय क्षति हुई।

3. **अहमदाबाद निवासी** श्रीमती विमलाबेन प्रवीणचन्द्र शाह का ७५ वर्ष की आयु में २ जनवरी को देहावसान हो गया। आप विगत १० वर्षों से देवलाली में रहकर धर्मलाभ ले रहीं थी।

4. **मुम्बई निवासी** श्री प्रफुल्लचन्द्र केशवलाल दोशी का दिनांक ११ जनवरी, ०६ को शांत परिणामपूर्वक देहावसान हो गया। आप जयपुर-देवलाली शिविरों में निरन्तर आया करते थे। आपकी स्मृति में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती नलिनीबेन की ओर से जैनपथप्रदर्शक को २५१/-रुपये प्राप्त हुये।

5. **ग्वालियर निवासी** डॉ. अभयप्रकाश जैन का दिनांक २१ जनवरी, ०६ को हृदयाघात के कारण देहावसान हो गया। आप जैनदर्शन के अच्छे विद्वान थे, जैन संस्कृति के संरक्षण में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता था। आपके स्वर्गवास से ग्वालियर जैन समाज को अपूरणीय क्षति हुई है।

6. **कारंजा निवासी** श्रीमती धोंडाबाई घोडके का दिनांक ३१ जनवरी, ०६ को देहावसान हो गया है। आप श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित आलोकजी शास्त्री की मातुश्री थीं।

उक्त सभी दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही चतुर्गति के दुःखों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करें ह्न यही मंगल भावना है। **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

निबन्ध प्रतियोगिता के परिणाम घोषित

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, जबलपुर द्वारा आयोजित निबंध प्रतियोगिता जिसका विषय **निश्चय शुद्धि के साथ व्यवहार शुद्धि का प्रेरक जैनधर्म** रखा गया था।

स्पर्धा में कुल 92 निबंध प्राप्त हुये, जिन्हे निर्णायक समिति के सदस्यों द्वारा जाँचकर परिणाम घोषित किया गया; जिसमें श्री महेश जैन भिलाई ने प्रथम एवं श्री श्री ज्ञानचन्द जैन ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। सांत्वना पुरस्कार कु. नीलू जैन जबेरा व दीप्ति जैन भोपाल को मिला। विजेताओं को पुरस्कार एवं समस्त सहभागियों को प्रमाणपत्र प्रेषित किये जायेंगे। **ह्न विराग शास्त्री**

आवश्यकता हेतु सम्पर्क करें

द्रोणगिरि : भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मुम्बई द्वारा प्रायोजित श्री दि. जैन तीर्थक्षेत्र प्रबंधन-प्रशिक्षण संस्थान, द्रोणगिरि संस्थान में छात्रों को प्रबंधन, एकाउण्ट, कम्प्यूटर, पूजन-विधि-विधान ह्न जैनदर्शन के साथ ज्योतिष एवं वास्तु शास्त्र इत्यादि विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती है।

संस्थान द्वारा विगत ७ सत्रों में छात्रों को प्रशिक्षण देकर विभिन्न संस्थाओं में भेजा जा चुका है। इस वर्ष ३२ छात्र प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, यह सत्र मार्च-२००६ में समाप्त होगा।

यदि आप अपनी संस्था के लिये प्रबंधक, विद्वान, लेखाकार एवं पुजारी पद पर सुयोग्य कार्यकर्ता चाहते हैं तो स्वयं पधारकर अथवा अपने प्रतिनिधि को द्रोणगिरि भेजकर अपनी आवश्यकतानुसार योग्य व्यक्ति का चयन कर सकते हैं।

अपने द्रोणगिरि पधारने की सूचना हमें अवश्य भेजें। यदि आप न आना चाहें तो अपनी आवश्यकता का पत्र भेजें; ताकि आपके पास योग्य व्यक्ति भेजा जा सके।

सम्पर्क सूत्र : भागचन्द जैन, मंत्री, श्री दि. जैन तीर्थ प्रबंधन प्रशिक्षण संस्थान, सिद्धक्षेत्र-द्रोणगिरि, सेंधपा, जिला-छतरपुर-४७१३११ (म.प्र.)

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

5 मार्च, 2006	**दिल्ली**	**युनिवर्सिटी**
19 से 21 मार्च, 2006	**जयपुर**	**युनिवर्सिटी सेमिनार**
14 से 16 अप्रैल, 2006	**दिल्ली**	**गुरुदेव जयन्ती**
26 से 29 अप्रैल, 2006	**देवलाली**	**गुरुदेव जयन्ती**
09 से 26 मई, 2006	**देवलाली**	**प्रशिक्षण-शिविर**
26 मई से 18 जुलाई, 06	**विदेश**	**धर्म प्रचारार्थ**
23 जुलाई से 1 अगस्त,06	**जयपुर**	**शिक्षण-शिविर**
04 से 09 अगस्त, 2006	**लंदन**	**पंचकल्याणक**
20 से 26 अगस्त, 2006	**मुम्बई**	**श्वेताम्बर पर्यूषण**

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) फरवरी (द्वितीय) 2006
RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए. जैनविद्या व धर्मदर्शन तथा इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि.राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127